PHILOSOPHY

Hons., Paper VIII (Part II)

Dr. S. K. Singh
Mob-9431449951.

स्वतः प्रामाण्यवाद (मीमांसा)

→ वेदों पर पूर्णतः आधारित मीमांसा वेदों को नित्य, अपौरुषेय एवं स्वतःसिद्ध मानता है। परिणामस्वरूप वे स्वतः प्रामाण्यवाद को स्वीकार करते हैं। इनके अनुसार जो कारण-सामग्री (ज्ञान की उत्पादक सामग्री) ज्ञान को उत्पन्न करती है, वही उस ज्ञान के प्रामाण्य (प्रमाणिकता) को भी साथ ही, उसी समय उत्पन्न कर देती है। जैसे ही ज्ञान उत्पन्न होता है, तत्क्षण ही उसके प्रामाण्य का भी ज्ञान हो जाता है। दूसरे शब्दों में, ज्ञान का प्रामाण्य और उस प्रामाण्य का ज्ञान दोनों ज्ञान के साथ ही उत्पन्न होते हैं तथा उसी सामग्री से उत्पन्न होते हैं, जिससे ज्ञान उत्पन्न होता है। ज्ञान का यथार्थ होना ~~उसकी~~ उसका स्वभाव है। ज्ञान की यथार्थता के ~~निर्धा~~ निर्धारण के लिये कारण-सामग्री से भिन्न किसी अन्य तथ्य या बाह्य स्थितियों की आवश्यकता नहीं होती।

→ मीमांसकों के स्वतःप्रामाण्यवाद में दो दृष्टिकोणों से विचार किया गया है - उत्पत्ति की दृष्टिकोण से और ज्ञप्ति के दृष्टिकोण से।

~~अ~~ उत्पत्ति ~~की~~ के दृष्टिकोण से स्वतःप्रामाण्यवाद ~~का~~ आशय है कि जिस कारण से ज्ञान उत्पन्न होता है, उसी कारण से ज्ञान की प्रमाणिकता भी उत्पन्न हो जाती है। (प्रामाण्यं स्वतःउत्पद्यते)।

ज्ञप्ति (जानकारी) के ~~कारण~~ दृष्टिकोण से स्वतःप्रामाण्यवाद का आशय है कि जिस साधन से ज्ञान का ग्रहण होता है, उसी साधन से ज्ञान की प्रामाणिकता का भी ग्रहण हो जाता है। (प्रामाण्यंस्वतःज्ञायतेच)।

→ परन्तु मीमांसक परतः ~~अप्र~~ अप्रामाण्यवाद में विश्वास करते हैं; अर्थात् ज्ञान की अप्रामाणिकता ज्ञानजनक सामग्री से भिन्न कुछ अन्य बाह्य तत्वों पर निर्भर ~~करता~~ है। मीमांसकों के अनुसार जब वस्तु संबंधी ज्ञान पहली बार उत्पन्न होता है तो हम उसे सत्य एवं प्रामाणिक मानते हुये ही आचरण करते हैं; परन्तु जब उनमें सफलप्रवृत्तिसामर्थ्य (आचरण की सफलता) नहीं पाते हैं तो फिर उस ज्ञान की अप्रामाणिकता का निर्धारण करते हैं।

Scanned with CamScanner

→ मीमांसकों के अनुसार प्रामाण्य तो ज्ञान जनक सामग्री में ही निहित होता है, परन्तु अप्रामाण्य ज्ञानजनक सामग्री से भिन्न कुछ अन्य अतिरिक्त तत्त्वों पर निर्भर करता है। इस अतिरिक्त तत्त्व सामग्री को यहाँ काणे दोष कहा गया है। काणे में दोष होने पर ही यह विषय का यथार्थ प्रकाशन नहीं कर पाता और वस्तु संबंधी हमारा ज्ञान गलत हो जाता है। स्पष्ट है कि ज्ञान की अप्रामाणिकता काणे-दोष पर निर्भर है। यह काणे-दोष अतिरिक्त तत्त्व है। अतः अप्रामाण्य का ग्रहण परतः होता है।

→ प्रामाण्य के संबंध में कुमारिल भट्ट और प्रभाकर अलग-अलग मत रखते हैं। प्रभाकर के अनुसार ज्ञान स्वप्रकाश्य है। उसे अपनी अभिव्यक्ति के लिये किसी अन्य ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती। ज्ञान स्वयं को प्रकाशित करने के साथ-साथ ज्ञाता और ज्ञेय को भी प्रकाशित करता है। प्रभाकर का यही सिद्धांत 'त्रिपुटीप्रत्यक्षवाद' कहलाता है। ज्ञान की प्रक्रिया में ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय तीनों प्रकाशित होते हैं। उदाहरणार्थ; मैं (ज्ञाता), घट (ज्ञेय) को जानता (ज्ञान) हूँ। (ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान - तीनों प्रकाशित हैं)।

→ कुमारिल भट्ट का ज्ञान विषयक मत ज्ञाततावाद कहलाता है। उनके अनुसार ज्ञान न तो स्वयं प्रकाशित है और न ही यह आत्मा को ज्ञाता के रूप में प्रकाशित करता है। ज्ञान केवल ज्ञेय को प्रकाशित करता है। ज्ञेय के प्रकाशन से वहाँ ज्ञातता की उत्पत्ति होती है। कुमारिल भट्ट के अनुसार जब किसी पदार्थ का ज्ञान होता है तो सबसे पहले उस पदार्थ में ज्ञातता नामक धर्म की उत्पत्ति होती है, अर्थात् वह पदार्थ ज्ञाता द्वारा ज्ञात हो चुका है। चूँकि यह ज्ञातता ज्ञान से भिन्न नहीं है, अतः यह ज्ञातता के आधार पर जिस ज्ञान की उत्पत्ति होती है, वह स्वतः प्रामाणिक होता है।

→ मीमांसा दर्शन यद्यपि वस्तुवादी है, परन्तु उसके ~~स्वतः प्रामाण्य~~ स्वतःप्रामाण्यवाद संबंधी विचार में पाश्चात्य दर्शन के संसक्तता सिद्धान्त (Coherence theory) की झलक दिखाई देती है। इस सिद्धान्त में आत्मसंगति और परस्पर संगति को सत्यता का आधार माना जाता है। वस्तुतः मीमांसकों का यह स्वतः-प्रामाण्यवाद वेदों में उनकी पूर्ण आस्था एवं विश्वास का परिणाम है।

Scanned with CamScanner